दीपावली-पर्व को मनाने की शुद्ध-जैन-विधि

(मननीय-लेख)

प्रो सुदीप कुमार जैन, नई दिल्ली

कार्तिक-मास के कृष्ण-पक्ष की अमावस्या-तिथि को हम सभी 'दीपावली-पर्व' की तिथि के रूप में जानते हैं और इसे उत्साहपूर्वक मनाते भी हैं। परन्तु इसे मनाने के क्रम में जैनसमाज में इतनी विविधतायें देखी जाती हैं कि समझना कठिन हो जाता है कि वास्तव में जैन-विधि कौन-सी है और क्यों हम उसे आदर्श मानें? सभी लोग अपनी-अपनी विधि को रूढ़िवश मानते हैं और वैसा ही आचरण करते हैं। क्योंकि उन्हें वास्तव में इस दिन क्या किया जाना चाहिये और वैसा ही क्यों किया जाना चाहिये?-- इसका साधार-विवेचन करनेवाली कोई पुस्तक या आलेख है ही नहीं। जो भी हैं, वे इस दिन के बारे में या तो अनेकप्रकार की रूढ़ियों का पोषण करते हैं, या फिर थोड़ा-बहुत आदर्शवादी कथन कर देते हैं। जो भी किया जाये, वह आदर्श क्यों है? उसकी आगम-युक्ति-तर्कसंगतता क्या है?-- इन बिन्दुओं पर कोई स्पष्ट तथ्यात्मकरूप से निर्धारण नहीं होने से "मुझे तो ऐसा पसंद है" या "हमारे यहाँ तो ऐसा होता आया है" -- जैसे आधारों पर सारा विवेचन किया गया है। इसीलिये कई जिज्ञासुओं एवं विद्वानों तक के निरन्तर अनुरोध आये कि मैं इस विषय पर तथ्यात्मकरूप से सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक-पक्षों को सन्तुलितरूप विवेचन करूँ और विवेकी-जिज्ञासुओं को मार्गदर्शन करूँ। इसीलिये तथ्यात्मकरूप से यह आलेख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम तो हमें यह जानना अपेक्षित है कि जिनाम्नाय में इस तिथि का विशेष-महत्त्व किन-किन कारणों से है? और उन कारणों या प्रयोजनों को व्यावहारिक रूप में हमें किस विधि से मनाकर निष्पादित करना चाहिये। साथ ही यह स्पष्टीकरण भी अपेक्षित है कि आज इस तिथि/पर्व के अवसर पर जो लौकिक-परम्परायें प्रचलित हैं, उनकी कोई सार्थकता है या वे अन्यमतियों के अन्धानुकरण पर आधारित हैं? क्योंकि गतानुगतिको लोकः की कहावत के अनुसार जनसामान्य तो दूसरों की देखा-देखी ही बहुत से कार्य करने

लगते हैं, उनकी वास्तविकता का कोई आधार उन्हें पता नहीं होता है। वे अपने व्यवहार की समीक्षा करें भी तो किस आधार पर करें? क्योंकि कुछ तथ्य पता भी तो होने चाहिये, जिनको आधार बनाकर हम अपने कार्यों की समीक्षा व सुधार कर सकें।

इसीलिये इस आलेख को तीन वर्गों में वर्गीकृत करके प्रस्तुत करूँगा । पहले-वर्ग में इसका ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक परिचय दिया जायेगा। दूसरे-वर्ग में इस विवेचन में आगत-तथ्यों को हमें किस रूप में स्मरण करना/मनाना चाहिये या अन्य महापुरुषों के ऐसे ही प्रसंगों को जिनाम्नाय में किसतरह मनाने का प्रावधान किया गया है?-- इसका निरूपण किया जायेगा। तीसरे-वर्ग में वर्तमान में इस तिथि/पर्व के निमित्त प्रचलित अतिरिक्त रूढ़ियों व परम्पराओं की वास्तविकता का विवेचन होगा। चूँकि यह आलेख है, अतः मैं हरसंभव प्रयास करूँगा कि इसमें अतिरिक्त-विवेचन से बचते हुये संक्षेप में बिन्दुशः (टू द् प्वाइंट) बात को तथ्यात्मकरूप से प्रस्तुत किया जाये।

1. दीपावली का जिनाम्नाय में इतिवृत्त:--

इस पर्व का इतिहास चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर स्वामी के साथ जुडा है। यह तिथि उनके परिनिर्वाण की तिथि है। अर्थात् इस दिन उन्हें मोक्ष/सिद्धपद प्राप्त हुआ था, इसलिये यह उनका मोक्ष-कल्याणक-दिवस है।

चूँकि यह घटना प्रत्यूष-बेला में अर्थात् सूर्योदय की पहली-किरण के साथ ही घटित हुई थी। और जिनाम्नाय में मुनिवरों के चातुर्मास का निष्ठापन की विधि भी कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को रात्रि के अन्तिम-प्रहर में ही की जाती है, अतः लगभग वही समय मुनिवरों के चातुर्मास के निष्ठापन की विधि पूर्ण होने का भी कहा जा सकता है। इसलिये एक शाश्वत-घटनाक्रम के रूप में इसे भी लिया जा सकता है।

इन दोनों घटनाक्रमों का समय इस दिन प्रभातबेला में है, तो इसी दिन सन्ध्या के समय भगवान् श्री महावीर स्वामी के प्रधान-गणधर इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। अतः जिनाम्नाय की दृष्टि से एक अन्य घटनाक्रम इस दिन यह भी माना जाता है।

इनके अलावा अन्य कोई उल्लेखनीय घटनाक्रम इस तिथि से सम्बद्ध जिनाम्नाय में वर्णित नहीं मिलता है।

2. ऐसे प्रसंगों को कैसे मनाने का प्रावधान जिनवाणी में है:--

इन तीनों घटनाक्रमों में चातुर्मास के निष्ठापन की प्रक्रिया तो मुनिराजों को सम्पन्न करनी होती है, इसलिये गृहस्थों को उसके निमित्त कुछ भी पर्व जैसे आयोजन का मतलब ही नहीं बैठता है।

इसीप्रकार किसी सामान्य-केवली के केवलज्ञान प्रकट होने पर किसी तरह का कोई पर्व जैसा आयोजन किये जाने का प्रावधान भी जिनवाणी में अलग से उल्लिखित नहीं मिलता है। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि गौतम-स्वामी इस युग के अन्तिम-केवली थे। क्योंकि इन्द्रभूति गौतम स्वामी के बाद भी दो अनुबद्ध-केवली (सुधर्म-स्वामी और जंबूस्वामी) हुये हैं तथा एक अननुबद्ध-केवली (श्रीधर-स्वामी/कुंडलपुर सिद्धक्षेत्र से) हुये हैं। किन्तु उनके तो कैवल्य-प्राप्ति की तिथि तक शायद ही किसी को याद हो, उसे मनाने की तो बात ही दूर रही। अतः इस प्रसंग को पर्व के रूप में मनाया जाना बहुत गले उतरनेवाली बात नहीं लगती है। चूँकि यह घटनाक्रम भगवान् श्री महावीर स्वामी के परिनिर्वाण के दिन ही घटित हुआ था और इससे भरतक्षेत्र 'केवली के विरह' की स्थिति समाप्त हुई थी, अतः इसकारण भले ही इस निमित्त कोई पर्व जैसा आयोजन किया गया हो-- यह संभावना है।

इस दिन सुबह जो निर्वाण-कल्याणक के निमित्त जो विशेष-पूजा एवं निर्वाण-गोला समर्पण का आयोजन होता है, वह अवश्य सभी तीर्थंकरों के निर्वाण-कल्याणक के प्रसंग पर किया जाता है, अतः उसे तर्कसंगत माना जा सकता है। उसके आयोजन पर कहीं कोई आपत्ति की बात नहीं है।

3. इस प्रसंग पर प्रचलित लोकरूढ़ियों की समीक्षा:--

इस पर्व के प्रसंग पर लोक में जैनेतर-मान्यतावाले लोगों में तो अनेकविध रूढ़ियाँ प्रचलित हैं ही, उनकी हम कहाँ तक समीक्षा करें? क्योंकि उनकी तो मान्यता ही ईश्वर-कर्त्तावादी है। वे किसी न किसी भौतिक-उपलब्धि से ही पर्वों के अनुष्ठानों को जोड़ते हैं। इसतरह जब दृष्टिभेद है, तब क्रिया-भेद तो होना ही था। अतः ऐसी किसी रूढ़ि की समीक्षा करना यहाँ हमारा लक्ष्य ही नहीं है।

यहाँ तो जैनों में इस पर्व के लिये कहे गये उपर्युक्त-कारणों के अनुरूप जो विधियाँ कहीं जातीं हैं, उनके अलावा जो रूढ़ियाँ इस पर्व के निमित्त प्रचलित हैं, उनकी समीक्षा करते हुये उनकी वास्तविकता एवं उपयोगिता के विषय में विचार किया जायेगा।

लोकरूढ़ि नं. 1. -- मंदिरों, घरों आदि भवनों की सफाई-पुताई करवाना:-- यह रंचमात्र भी धार्मिक-विधि नहीं है। यह तो भारतीय-उपमहाद्वीप की प्रकृति एवं पर्यावरण के अनुसार की जाने वाली लौकिक-समझदारी की बात है। बरसात के दिनों में सभी प्रकार के भवनों में नमी व सीलन का प्रभाव हो ही जाता है। चूँकि दीपावली से लगभग एक माह पहले तक बारिश बंद हो चुकी होती है, इसलिये इस एक माह के समय में नमी सूख चुकी होती है। अब देखना होता है कि भवनों में नमी. या सीलन का कहाँ कहाँ दुष्प्रभाव बचा है। उसे दूर करना आवश्यक है, क्योंकि आगे शीतऋतु शुरू हो रही है, तो भवनों के भीतर इन नमीवाली जगहों पर बसनेवाले सूक्ष्मजीव बढ़ेंगे और साँसों के माध्यम से हमारे स्वास्थ्य को अनेकप्रकार के श्वास-रोगों से ग्रस्त करेंगे। अतः घरों की सफ़ाई व चूने से पुताई करने के बाद यह आशंका समाप्त हो जाती है। इसलिये यह पूरीतरह से लौकिक-क्रिया है, जो इन दिनों प्रकृति व पर्यावरण की दृष्टि से की जाती है। संयोगवश इसी समय यह पर्व आता है, तो हम लोग इससे जोड़कर इस क्रिया को दीपावली का अंग मानने लगे हैं और रूढ़िचुस्त-लोगों ने इसतरह का प्रचार भी कर दिया है। यह सिर्फ अज्ञान है कि दीपावली-पर्व के पहले भवनों की सफाई पुताई कराना इस पर्व का अंग है।

लोकरूढ़ि नं. 2-- दीपक जलाकर भवनों को रोशन करना:-- यद्यपि हमारे देश में यह परम्परा है कि कोई भी खुशी का अवसर आये, तो अपने भवनों की सज्जा करो, उन्हें रोशन करो। इसीलिये शादी-विवाह, पार्टी आदि खुशी के प्रसंगों पर हम उस भवन पर यह कार्य करते हैं। यह लोक-शिष्टाचार है, खुशी व्यक्त करने का एक तरीका है। पहले घी या तेल के दीपक जलाये जाते थे, जो कि भवनों में रात को प्रकाश करने के लिये पहले जलाये ही जाते थे। अब चूँकि हम अपनी रोजमर्रा की इस जरूरत की पूर्ति के लिये बिजली के बल्व, ट्यूबलाइट आदि जलाते हैं, तो खुशी के अवसरों पर भवनों पर भी लाइटें व लड़ियाँ आदि लगाकर उन्हें रोशन करते हैं।

परन्तु इस कार्य का भगवान् श्री महावीर स्वामी के निर्वाण-कल्याणक से कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध नहीं है, क्योंकि निर्वाणप्राप्ति पर कभी दीपक जलाने या रोशनी करने की परम्परा हमारी आम्नाय में नहीं रही है। अतः निर्वाण-कल्याणक मनाने के लिये दीपक जलाने का कोई औचित्य नहीं है।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि दीपक तो हम शाम को गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति होने की खुशी में जलाते हैं। तो भाई! मैं यह मानता हूँ कि हमारे देश में दीपक जलाने को ज्ञान का प्रतीक माना गया है। लौकिक दृष्टि में भी और धार्मिक दृष्टि से भी ; क्योंकि कहा जाता है कि "ज्ञान-दीप तप-तेल भर", किन्तु यह मात्र आलंकारिक प्रतीकात्मक कथन है। दीपक जलाने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, बल्कि अतस् में व्याप्त मोहरूपी अंधकार को दूर करने के लिये जिनवाणी के स्वाध्याय द्वारा ज्ञान के प्रकाश की अपेक्षा होती है। अतः इस पर्व पर दीपक जलाना या लाइटें लगाना एक लोकरूढ़ि मात्र है, किसी भी दृष्टि से धर्मविधि नहीं है। बल्कि दीपक जलाकर ज्ञान की पूजा करने की कल्पना ही जिनाम्नाय-सम्मत नहीं है।

लोकरूढ़ि नं. 3.-- शाम को घरों व भवनों में पूजाविधि करना:--

जिनाम्नाय में तो रात्रि में पूजन का कहीं कोई विधान ही नहीं है, तो हम दीपावली की पूजन की बात कैसे कर सकते हैं? जो क्रिया मूलतः ही सैद्धान्तिक रूप से निषिद्ध है, उसे व्यवहार में कैसे किया जा सकता है?

आप कह सकते हैं कि "त्रिकाल-पूजा, त्रिकाल-वन्दना" जैसे कथन फिर क्यों आते हैं? वास्तव में यह एक भ्रामक-प्रयोग है। जिनवाणी में श्रावकों के लिये "त्रि-सन्ध्यमभिवन्दी" प्रयोग मिलता है, जिसका अभिप्राय है कि वह तीनों संधिकालों में (सूर्योदय-काल, मध्याह्न-काल एवं सायंकाल) सामयिक करे। यह सामयिक की विधि वह सुबह देवदर्शन-पूजन के साथ करता है और दोपहर व शाम को सामयिक के रूप में करता है। रात्रि में अष्टद्रव्यों से पूजन करने का प्रावधान जिनाम्नाय में कहीं है ही नहीं, न ही पूजा पढ़ने का विधान है। स्तुति, पाठ, जप, स्वाध्याय एवं ध्यान आदि का कभी निषेध नहीं किया गया है। यह कैवल्य की प्राप्ति का मंगल-प्रसंग है, अतः गलत-रूढ़ियों के रूप में पलनेवाले मिथ्यात्व को छोड़िये और इसे दूर करने के लिये स्वाध्याय के द्वारा अपने अंतस् में ज्ञान का दीप जलाइये। इसके प्रकाश में अपना मोहांधकार दूर करके सम्यग्ज्ञान का आलोक फैलाइये।-- यही विवेकोचित-विधि होगी।

लोकरूढ़ि का अनुसरण विवेक की निशानी नहीं है, परन्तु यदि किसी दबाब में ऐसा कुछ करने की विवशता लगे भी, तो प्रतीकात्मक रूप में विद्युत की लड़ी लगाकर भवनों को रोशन कर सकते हैं। (ताकि पड़ोसी यह न समझ लें कि आपके यहाँ कोई शोक का प्रसंग है और आप काली-दीवाली मना रहे हैं।) परन्तु यदि आप मनोबल के धनी हैं, तो इसकी विवशता भी मत मानिये। प्रसन्न रहकर स्वाध्याय आदि करके ज्ञानदीप प्रज्वलित करिये।

इस अवसर पर अग्निवाले दीपक जलाना और उनसे जिनवाणी रखकर सूखे चावलों या अष्टद्रव्यों से किसी भी प्रकार की पूजा करने का कोई प्रावधान जिनाम्नाय में नहीं है-- यह बात अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये।

वैदिक-परम्परा के पंडितों ने हमारे मन में बहुत-सारी रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास गहरे बैठा दिये हैं, इसलिये उनकी देखा-देखी हम भी घरों में पूजनविधि करने लगे हैं। वे लक्ष्मी-पूजन करते हैं, ताकि घर में धन-समृद्धि बढ़े। किन्तु जिनाम्नाय में तो किसी भी रागी-देवी-देवता की पूजन का प्रावधान ही नहीं है, बल्कि ऐसा करना 'गृहीत-मिथ्यात्व' माना गया है। तो हमारे कुछ बुजुर्गों ने बीच का रास्ता निकाला कि

"तुम जिनवाणी रखकर दीपक जला लो और जिनवाणी की पूजन कर लो।" ताकि सीधे गृहीत-मिथ्यात्व का दोष भी न लगे और लोकरूढ़ि भी पूरी हो जाये।" परन्तु यह कोई विवेकपूर्ण बात नहीं है। रात्रि में सामग्री चढ़ाकर पूजन करना एवं उसके निमित्त दीपक जलाना--ये दोनों ही कार्य जिनाम्नाय के विरुद्ध हैं।

इसका सबसे बेहतर-स्वरूप यही होगा कि हम स्वयं केवलज्ञानी बनने की दिशा में अग्रसर हों। इसके लिये अपने स्वरूप का निर्णय करने के लिये जिनवाणी का स्वाध्याय करें, अपने हृदय में गृहीत-मिथ्यात्व के त्याग करने के संकल्परूपी दीपक प्रज्वलित करके स्थापित करें।

बहुत करने का भाव हो, तो जिनवाणी को विराजमान करके उसकी भावपूर्ण-भक्ति व गुणानुवाद कर सकते हैं। किन्तु दीपक जलाकर कोई पूजा-विधि इसतरह रात्रि में करना जिनाम्नाय के अनुरूप नहीं है। जिनवाणी की पूजा करने में आराध्य तो सही हैं, किन्तु रात्रि में, दीपक जलाकर द्रव्य चढ़ाकर पूजा करने की आराधना-विधि गलत है। यह स्पष्ट जान लेना चाहिये।

लोकरूढ़ि क्र. 4.-- भेंटें/गिफ्ट लेना-देना: -- यह मात्र लोकाचार है, इसका धर्मविधि से कोई संबंध नहीं है। यह आप अपने लौकिक रिश्ते-नातों व आपसी संबंधों के अनुसार करें, इससे धर्मविधि का कोई लेना-देना है ही नहीं। अतः धार्मिक-दृष्टि से इस पर कोई प्रतिक्रिया करना कदापि उचित नहीं है।

इसीप्रकार खील-बतासे आदि का भी जिनाम्नाय की पर्व-विधि से कोई भी संबंध नहीं है। भले ही कोई विद्वान् इसकी तुक बिठाते हुये जैनधर्म से खींच-तानकर संबंध सिद्ध करते हों, परन्तु वह सब जबरन जोड़-तोड़ बिठाना है। वास्तव में किसी जैन-पर्व-विधि को मनाने में खाने-पीने से कोई रिश्ता होता ही नहीं है। पंडितगण अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये ऐसी खींचतान करते हैं, वह उनकी सीमित-सोच का परिणाम है। जिनवाणी में ऐसी कोई प्रविधि कहीं भी वर्णित नहीं है और न ही जिनाम्नाय से इनकी कोई संगति है।

लोकरूढ़ि क्र. 5.-- लक्ष्मी-गणेश-पूजन:-- यह तो मूलतः जिनाम्नाय की विधि ही नहीं है, क्योंकि लक्ष्मी और गणेश वैदिक-आम्नाय में पूजे जाते हैं, जिनाम्नाय में नहीं । यहाँ लक्ष्मी से स्पष्ट-अभिप्राय गहनों से लदी, कमलासन पर बैठी हुई वैदिक-मान्यता की धन की अधिष्ठात्री देवी से है और गणेश से अभिप्राय

मानव-धड़ पर गजशावक के सिर से युक्त लड्डू-प्रिय, मूषक-वाहन लम्ब-उदरवाले रागयुक्त-देव माने गये व्यक्तित्व से है।-- ऐसे किसी भी प्रारूप को जिनाम्नाय में कदापि पूज्य नहीं माना गया है। क्योंकि सवस्त्र, परिग्रही रागी-व्यक्तियों की लोकैषणा से की गयी पूजा-अर्चना या मान्यता को जिनाम्नाय में 'गृहीत-मिथ्यात्व' माना गया है।

एक सांयोगिक-व्याख्या अवश्य की जाती है कि कार्तिक-अमावस्या को सायंकाल भगवान् श्री महावीर स्वामी के प्रधान-गणधर इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। चूँकि गणधर को जिनाम्नाय में 'गणेश' की संज्ञा से भी संबोधित किया गया है--

"नमो वृषभसेनादि-गौतमान्त-गणेशिने"

इसमें उल्लिखित वृषभसेन जी पहले तीर्थंकर ऋषभदेव स्वामी के प्रधान-गणधर थे और इन्द्रभूति गौतम अन्तिम-तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर स्वामी के प्रधान-गणधर थे। और इन्हें यहाँ 'गणेश' कहा गया है।

{मैंने कई वर्ष पहले अपने एक आलेख मंगलमूर्ति गणेश : तथ्यों के आलोक में में अनेकों जैन एवं जैनेतर-प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि गणधर ही गणेश हैं और यह जैन-देवता हैं, वैदिक नहीं। अतः उस विषय में यहाँ पुनः नहीं लिख रहा हूँ।}

और यह जब स्पष्ट है कि गौतम-गणधर ही गणेश हैं और उन्हें ही केवलज्ञान-श्री/लक्ष्मी की प्राप्ति आज के दिन इस मुहूर्त में हुई थी, तो इसतरह कार्तिक-अमावस्या को जिनाम्नाय के लक्ष्मी-गणेश की युति तो बैठ जाती है ; किन्तु वैदिक-आम्नाय में तो वह भी नहीं बैठती है।

वैदिक-मान्यता के अनुसार लक्ष्मी 'वैष्णव-परम्परा' की अधिष्ठात्री-देवी हैं, क्योंकि वे विष्णु जी की पत्नी हैं। किन्तु गणेशजी शिव जी के पुत्र होने से 'शैव-परम्परा' के अधिदेव सिद्ध होते हैं। इन दोनों में आपस में कोई रिश्ता या संबंध तक सिद्ध नहीं होता है और न ही ऐसा कोई प्रामाणिक वृत्तांत मिलता है, जिसमेम कार्तिक-अमावस्या की सन्ध्या को इनकी युगपत्-रूप से पूजा किये जाने की घटना मिलती हो या तार्किकता सिद्ध होती हो। तब वैदिक-आम्नाय वाले कार्तिक-अमावस्या के इस प्रसंग पर लक्ष्मी-गणेश

की युति की कल्पना व इनकी युगपत् रुप से पूजन करने की बात कैसो करते हैं? पता नहीं है। लगता है कि रूढिः शास्त्राद् बलीयसी अर्थात् 'लोक में एक बार प्रचलित हो गयी रूढ़ि सौ शास्त्रों से भारी सिद्ध होती है'-- इसी आधार पर कार्तिकी-अमावस्या को लक्ष्मी-गणेश की युगपत्-पूजन की परम्परा उनके यहाँ प्रचलित हुई होगी।

जबकि जैन-परम्परा के अनुसार इस दिन गणेश (गणधर) को कैवल्य-लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी, अतः इन्द्रभूति गौतम स्वामी की एवं केवलज्ञान की पूजा/महिमा/यशोगान जिनाम्नाय में हो-- यह तो तर्कसंगत प्रतीत होता है। किन्तु लोक में इन्हें किस रूप में विराजमान किया जाये? -- यह यक्षप्रश्नवत् समस्या है।

चूँकि केवलज्ञान भाव है, उसकी प्रतिमा बनायी नहीं जा सकती है। और गौतम-गणधर स्वामी इस समय अरिहंत-केवली बन गये थे, अतः वीतरागी अरिहंत भगवान् के आकार में ही उनकी पूजा की जानी चाहिये। जबकि आजकल लोक में लक्ष्मी की व गणेशजी की जो प्रतिमायें प्रचलित हैं, उनमें वीतरागता के कोई चिह्न तक नहीं हैं, तो वे जिनाम्नाय में पूज्य कैसे बो सकतीं हैं? यही कारण है कि यही कहना उचित एवं भ्रम-निवारक होगा कि कार्तिक-अमावस्या के दिन जिनाम्नाय में लक्ष्मी-गणेश की पूजन का कोई प्रावधान नहीं है।

इनके अलावा जो भी रूढ़ियाँ इस दिन के निमित्त प्रचलित हैं, वे जिनाम्नाय की परिधि के बाहर होने से यहाँ विचारणीय तक नहीं हैं। इसीलिये उनकी चर्चा तक यहाँ मैं कपना प्रासंगिक नहीं मानता हूँ।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि कार्तिक-अमावस्या के दिन जिनाम्नाय में सुबह निर्वाण-कल्याणक की विशेष-पूजा एवं उसके अन्तर्गत निर्वाण-गोला समर्पित करना तथा शाम को इन्द्रभूति गौतम को कैवल्य-प्राप्ति के उपलक्ष्य में केवलज्ञान की भक्ति, स्वाध्याय, जिनवाणी की स्तुति-भक्ति करते हुये अपने हृदय में व्याप्त अज्ञान और मोहरूपी-अंधकार के निवारण के लिये सम्यग्ज्ञानरूपी दीप अंतस्

में प्रज्वलित करने का प्रयास करना चाहिये। शेष किसी भी लोकरूढ़ि के चक्कर में पड़कर गृहीत-मिथ्यात्व का बंध नहीं करना चाहिये।

[विशेष: -- निर्वाणप्राप्ति के प्रतीकरूप में छिला हुआ गोल नारियल-गोला धोकर व केसर से रंगकर निर्वाण के प्रतीक के रूप में ऩढ़ाना उचित है। यदि यह न हो, तो बादाम-सहित अर्घ्य समर्पित करके भी निर्वाण-कल्याणक की पूजाविधि जिनाम्नाय में सम्मत है। चीनी के लड्डू चढ़ाना बहुत से जीवों की हिंसा के बिना संभव ही नहीं है, इसलिये वह नहीं चढ़ाना चाहिये। तथा बूँदी के लड्डू तो राँधा हुआ अनाज है, और राँधा हुआ अनाज जिनपूजा-विधि में प्रयोग करना निषिद्ध है, इसलिये वह भी नहीं बनवाना या चढ़ाना चाहिये।]